

भारत देश की सामाजिक व्यवस्था मनुस्मृति की वर्ण व्यवस्था पर आधारित है। इसके अन्तर्गत समाज में ब्राह्मण सर्वोच्च पहले स्थान पर, क्षत्रिय दूसरे स्थान पर, वैश्य तीसरे स्थान पर और शूद्र चौथे स्थान यानी सबसे नीचे हैं। ब्राह्मणों का काम शिक्षा देना और मनुस्मृति के दंड-विधान को लागू करवाना था, वहीं क्षत्रिय का देश की सुरक्षा और शासन चलाना था और वैश्य का काम खेती-बाड़ी व व्यापार करना था। ये उपरोक्त तीनों श्रेणी 'द्विजों' की थी। शूद्रों का काम उपरोक्त तीनों श्रेणी के लोगों के सेवा करना और उनकी हुकम-फरमानी करना था। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने, धन अर्जित करने और स्वतंत्र जीवन जीने का निषेध था। शूद्रों को भी दो भागों में बांटा गया था—सछूत व अछूत। शूद्रों के सछूत वर्ग में वे लोग आते थे जो द्विजों के चौखट (घर) के अन्दर जा सकते थे और अछूत वर्ग के लोगों को उनकी चौखट से दूर गांव से बाहर रहने का प्रावधान था। इन अछूतों के छू जाने का पाप माना जाता था और इनकी छाया से दूर बचकर रहना शुभ माना जाता था। इनका दिन में घर से बाहर निकलना निषेध था, सिर्फ रात को ही इन्हें घूमने-फिरने का विधान था। पेशवाओं के राज में अछूतों को रात के अन्धेरे में गले में थूकने के लिए हांडी व पीठ पीछे झाड़ू बांधकर चलने का प्रावधान था ताकि उनके पांव के निशान से अपवित्र हुई जमीन झाड़ू से साथ-साथ शुद्ध हो जाए।

मनुस्मृति की यह वर्ण व्यवस्था

## दलितों व शोषितों का पाक्षिक पत्र विज्ञापन के लिए केन्द्रीय सरकार व राज्यों द्वारा स्वीकृत



सम्पादक—डॉ० सोहनपाल सुमनाक्षर

□ वर्ष 57 □ अंक-8 □ दिल्ली □ फरवरी, 2019 (प्रथम) □ मूल्य : 2 रु.

# सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन में दलित साहित्यकारों की भूमिका

—डा. सोहनपाल सुमनाक्षर

पिछले पांच हजार साल से देश का भारतीय संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू होने तक लागू रही। इस वर्ण-व्यवस्था के कारण 15 प्रतिशत द्विजों ने 85 फीसदी शूद्रों (दलितों) को बंधुआ, दास व गुलाम बनाये रखा और देश की सत्ता व सम्पदा पर एकाधिकार बनाये रखा। यही नहीं, द्विजों ने शूद्र-अछूतों पर अपनी पूर्ण एकाधिकार कायम रखने के लिए उन्हें अनेक जाति व उपजातियों में बांट दिया और उन पर कर्तव्यों के नाम पर सख्त से सख्त व घृणित काम थोप दिये। इसका यह परिणाम निकला कि समाज हजारों

जातियों व उपजातियों में बंट गया और शूद्र वर्ण की प्रत्येक जाति व उपजाति अपने को 'ऊंची' व दूसरी जाति को 'नीची' जाति समझने लगी। यह सब इसलिए किया गया ताकि शूद्र जातियां एकजुट हों, मुट्टी भर सवर्णों के विरुद्ध विद्रोह न कर सकें। इसके साथ ही ब्राह्मणों ने पुनर्जन्म, भाग्य-भगवान, पाप-पुण्य, धर्म-कर्म, स्वर्ग-नरक की 'थ्योरी' घड़ी और उन्हें भी अपने शास्त्रों में शामिल कर इसे भगवान निर्मित घोषित किया। मनुस्मृति को भी भगवान मनु का विधान बताकर शूद्रों को उस पर विश्वास करके

स्वीकारने और उस पर अमल करने को अपना धर्म मानने को बाध्य किया। यही नहीं, मनुस्मृति में सवर्णों (द्विजों) के लिए दंड विधान और शूद्रों के लिए अलग दंड विधान का प्रावधान किया और उसके उल्लंघन व विरोध करने पर अंग-भंग व मृत्युदंड जैसा विधान रखा।

इस ब्राह्मणवादी षड्यंत्र ने समाज को हजारों जातियों व उपजातियों में बांट दिया और प्रत्येक जाति अपने को ऊंची और दूसरी को नीची समझने लगी। देश की सत्ता व सम्पदा पर केवल मुट्टी भर द्विजों (सवर्णों) का

कब्जा रहा और देश की 85 प्रतिशत शूद्र (दलित) दासता व गुलामी को अपना कर्तव्य समझकर निभाते रहे और बिना अपने किसी 'अधिकार' की सोचे उनकी गुलामी में जुटे रहे। सदियों से शिक्षा से वंचित रहने के कारण उनकी विचारशक्ति व तर्कशक्ति ही खत्म हो गई और जो ब्राह्मणों ने उन्हें बताया उसे ही उन्होंने अपनी नियति समझ लिया। उन्होंने यह समझ लिया कि यह पूर्व जन्म के पापों का फल है जो हम 'नीच जात' में पैदा हुए हैं। अब हमें अपने मालिकों की हुकम-अदुली करके अच्छी सेवा करनी है ताकि हमारा अलग जन्म सुधर सके। सवर्णों का अत्याचार सहना हमारा कर्तव्य है।

इस तरह सदियों से अज्ञानता के कारण दलित समाज ब्राह्मणों के कर्मकांड, पाखंड, धर्मान्धता में फंसा अधिकारविहीन जीवन जीते हुए क्रूर से क्रूर अत्याचार सहता रहा। उसे न मानवीय जीवन जीने का अधिकार था और न ही सम्मान व समानता की बात करने का। ब्राह्मणवादी इस वर्ण व्यवस्था के खिलाफ सबसे पहला शंखनाद भगवान बुद्ध ने किया, जिन्होंने कहा कि शिक्षा पाने का सबको बराबर का अधिकार है। उन्होंने अछूतों के लिए भी बौद्ध विहार के द्वार खोल दिए पर बौद्ध धर्म के पतन व पलायन के बाद ब्राह्मणवाद फिर हावी हो गया और वर्ण व्यवस्था व जात-पात का और कठोरता से पालन शुरू हुआ। इससे दलित अछूत जातियों का जीवन (शेष पृष्ठ 3 पर)

# दलितों के मौलिक अधिकारों का हनन

आज से लगभग 700 साल पहले संत शिरोमणि गुरु रविदास ने कहा था—ऐसा चाहूँ राज मैं जहां मिले सभी को अन्न। छोट बड़े सब सम बसैं, रविदास रहे प्रसन्न।। ऐसे लोकतांत्रिक राज्य की पूरी रूप रेखा उन्होंने अपनी प्रसिद्ध साखी 'बेगमपुरा' में वर्णित की थी—बेगमपुरा शहर को नाऊं। एकम दोयम ना तोहीं पाऊं।

इस साखी में उन्होंने कहा था कि मैं एक ऐसा राज्य चाहता हूँ जहां किसी को कोई गम न हो, नीच ऊंच ना हो, एकम व दूसरे दर्जे ना हो, जहां छोटे बड़े एक साथ मिलकर रहें, जहां किसी को किसी तरह की दुःख—तकलीफ ना हो, जहां सबको भरपेट अनाज, सिर ढकने को कपड़ा और रहने को घर हो, वहां किसी तरह की चुंगी, टैक्स ना हो, लोग एक जगह से दूसरी जगह बेखौफ निर्भीकता से जा सकें। शुद्ध खुले वातावरण में वे सुख की सांस ले सकें। ऐसा बेगमपुरा शहर मेरा होगा।

संत गुरु रविदास जी ने यह सपना अब से लगभग 700 साल पहले देखा था। तब बादशाही जमाना था। उसके बाद अंग्रेजों से आजादी पाये भारत को 70 साल बीत चुके हैं और भारतीय संविधान को लागू होने पर देश को लोकतांत्रिक राज्य बने 69 साल हो गये हैं। देश को आजादी मिलने के बाद आशा जागी थी कि संत गुरु रविदास जी का सपना पूरा होगा और समाज से जात—पांत, ऊंचनीच, भेदभाव, खत्म होगा और सभी लोग सामाजिक, आर्थिक,

शैक्षणिक, राजनीतिक स्तर पर बराबर होंगे। लोगों की रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का हल हो जायेगी और लोग सुख की सांस लेते हुए आनन्द की जिन्दगी बसर कर सकेंगे। पर आजादी के 71 साल बीत जाने के बाद आज दलितों की दशा बद से बदतर हो गई है। उसे भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता, समता, बन्धुता, न्याय व सुरक्षा के अधिकार अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं, उल्टे 'पूना पैक्ट' करारनामा के बतौर मिले आरक्षण कोटे के अधिकार को षडयंत्र पूर्वक खत्म किया जा रहा है।

आजादी के पिछले 71 सालों में दलितों को सरकारी नौकरियों में जो आरक्षण कोटा मिलना चाहिए था, वह अब तक पूरा नहीं किया गया, उस आरक्षित खाली कोटे को भरने की बजाय अब उच्च शिक्षा में तय 200 पॉइंट रोस्टर को खत्म करके 13 पॉइंट रोस्टर लागू किया जा रहा है जिसके तहत जहां पहले आरक्षण सीटों का आधार पूरे विश्वविद्यालय में खाली पदों की संख्या थी, वहीं अब उच्च शिक्षा में विभागवार रिजर्वेशन रोस्टर लागू कर दिया गया है जहां कभी भी इतनी सीटें खाली नहीं होंगी कि उन पर दलितों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति) तथा पिछड़ा वर्ग के लोगों उनके निर्धारित आरक्षण के तहत नौकरी मिल सके। ऐसी स्थिति में अब कोई भी दलित न विभागाध्यक्ष बन सकेगा,

न 'प्रोफेसर' और न ही 'वाइस चांसलर'। पहले संविधान प्रदत्त आरक्षण कोटा के भरे जाने की जो उम्मीदें थीं, वह अब षडयंत्र के तहत खत्म किया जा रहा है। इससे पहले दलितों का जो आरक्षण कोटा सामाजिक व शैक्षणिक पिछड़ेपन के लिए मिला था, उसे अब मोदी सरकार आर्थिक पिछड़ापन आधार बनाकर गरीब सवर्णों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने का अध्यादेश पास कर दिया है, जबकि सुप्रीम कोर्ट ने पहले से ही 50 फीसदी से ज्यादा आरक्षण कोटा दिये जाने पर रोक लगा रखी है।

सवर्ण वोट के लालच में मोदी सरकार ने 70 प्रतिशत आरक्षण पाने के लिए 'गरीब सवर्ण' की जो परिभाषा निश्चित की है, वह भी स्वयं हास्यास्पद है। साधारण आम व्यक्ति पर सालाना ढाई लाख रु. की आमदनी पर 'इन्कम टैक्स' लग जाता है और उसे आर्थिक रूप से गरीब नहीं माना जा सकता। वहीं मोदी सरकार ने सालाना 8 लाख रुपये तक कमाने वाले या 5 एकड़ तक जमीन का मालिक को गरीब सवर्ण की श्रेणी में रखा है जो स्वयं में संविधान की सीमाओं का उल्लंघन करना है क्योंकि संविधान में कहीं भी आरक्षण कोटा आर्थिक आधार पर दिये जाने का उल्लेख नहीं है। ऐसी स्थिति में दलितों को अपना आरक्षण कोटा को बचाने के लिए कमर कस

(शेष पृष्ठ 4 पर)

## भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

विश्व धरातल पर दलित साहित्य	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
अंधा समाज और बहरे लोग	डॉ. सुमनाक्षर	60/-
सिन्धु घाटी बोल उठी	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
अब नहीं रहेंगे हाशिये पर	डॉ. सुमनाक्षर	80/-
अम्बेडकर शतक	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
विश्व विभूति डा. अम्बेडकर	डॉ. सुमनाक्षर	50/-
दलित लेखक परिचय ग्रंथ (अंग्रेजी)	डॉ. सुमनाक्षर	250/-
बुद्धा दू अम्बेडकर (अंग्रेजी)	डॉ. सुमनाक्षर	150/-
दलित साहित्य	डॉ. सुमनाक्षर	100/-
अम्बेडकर दर्शन	डॉ. सुमनाक्षर	40/-
हमारे संत और समाज सुधारक	डॉ. सुमनाक्षर	60/-
धर्म और समाज	डॉ. सुमनाक्षर	40/-
आदिम जाति चमारा	डॉ. सुमनाक्षर	300/-
(इतिहास, धर्म, संस्कृति)		
दलित उद्घोष	डा. सुमनाक्षर	80/-
दलित साहित्य की हुंकार—सात सम्बद्ध पार	डॉ. सुमनाक्षर	100/-
युगपुरुष बाबू जगजीवनराम	डॉ. सुमनाक्षर	200/-
प्राचीन आदिम जाति वाल्मीकि	डॉ. सुमनाक्षर	100/-
(इतिहास, धर्म, संस्कृति)		
सभ्यता, संस्कृति, समाज और साहित्य	आचार्य गुरुप्रसाद	100/-
डा. अम्बेडकर भजनावली	राजमल 'राज'	25/-
हमारे दलित गौरव	राजमल 'राज'	25/-
भारत रत्न डा. वी.आर. अम्बेडकर	राजमल 'राज'	25/-
मूल भारती से दलित	राजमल 'राज'	50/-
अम्बेडकरवाद बनाम सामाजिक परिवर्तन	राजमल 'राज'	80/-
दलित साहित्य—दशा और दिशा	डा. माता प्रसाद	200/-
दलित साहित्य से सामाजिक परिवर्तन	डा. माता प्रसाद	100/-
भारत की गुलामी के 22 सौ साल	प्रदीप कुमार मौर्य	250/-
सृजन के कण	जीपी पचौरिया 'दीप'	150/-
बौद्ध धर्म—गया से अयोध्या तक	प्रदीप कुमार मौर्य	120/-
गांधी, अम्बेडकर और दलित	प्रदीप कुमार मौर्य	100/-
सत्सम दर्शन	राजमल 'राज'	100/-
जागा मेहनतकश इंसान	राजमल 'राज'	50/-
हम एक हैं	डा. माता प्रसाद	60/-
रैदास से संत शिरोमणि गुरु रविदास	डा. माता प्रसाद	50/-
ताकि सनद रहे	डा. सुमनाक्षर	100/-

पुस्तक मंगाने के लिए मनीआर्डर से राशि अग्रिम भेजें, व्यवस्थापक,

## दलित साहित्य सेन्टर

(भारतीय दलित साहित्य अकादमी)

बी-3/9, दूसरी मंजिल, माडल टाउन-1, दिल्ली-9

फोन : 27421449, 27421460, मो. 9810278936



# लोकतन्त्र में नागरिक निडरता!

• अश्विनी कुमार

जब भारत में प्रथम प्रधानमंत्री प. जवाहर लाल नेहरू ने इलाहाबाद की सभा में अपने गले में पड़ी फूलमाला उतार कर सामने की पंक्ति में सीधे अखाड़े में आकर मिट्टी में लथ-पथ बैठे महाकवि महाप्राण निराला के गले में डालते हुए यह कहा कि समाज का सबसे बुद्धिमान और सुविज्ञ व्यक्ति ही कवि हो सकता है तो उनका सन्देश पूरे देश की जनता को यही था कि लोकतन्त्र नागरिकों को निडर और निर्भय होकर अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता देता है। उन्होंने 1956 के करीब जब यह कहा कि देश में विपक्ष के नाम पर राजनैतिक दलों की ताकत नाम मात्र की थी। मुख्य विपक्षी दल वही थे जो कांग्रेस से निकल कर ही गये थे। इनमें दक्षिण में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की स्वतन्त्र पार्टी और उत्तर में डा. राम मनोहर लोहिया व आचार्य नरेन्द्र देव की सोशलिस्ट पार्टी प्रमुख थी परन्तु नेहरू जानते थे कि भारत जैसे अंग्रेजों द्वारा लुटे गये मुल्क में हिंसक विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। इसका अनुमान उन्होंने 26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू होते ही लगा लिया था। अतः उन्होंने बाबा साहेब अम्बेडकर की मौजूदगी में ही प्रथम लोकसभा चुनाव

होने से पहले ही पहला संविधान संशोधन किया और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में हिंसा फैलाने वाले विचारों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया।

नेहरू की इस दूरदर्शिता के डा. अम्बेडकर भी कायल हुए और उन्होंने स्वीकार किया कि मैं इस पक्ष पर ध्यान ही नहीं दे पाया कि लोकतान्त्रिक भारत में अभिव्यक्ति की आजादी का लाभ हिंसा की मार्फत राजनीति को कब्जाने वाले लोग भी कर सकते हैं। मगर पं. नेहरू के इस संशोधन का मुखर विरोध तब हिन्दू महासभा ने किया और इसके नेता एन.सी. चटर्जी ने पीयूसीएल संस्था के माध्यम से इसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दे दी। मुख्य तर्क यह था कि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का वर्गीकरण हिंसक और अहिंसक खानों में बांट कर कैसे किया जा सकता है? जवाब बहुत ही माकूल था कि लोकतन्त्र केवल शांतिपूर्ण तरीकों से ही सत्ता परिवर्तन की प्रक्रिया का नाम है। सर्वोच्च न्यायालय में संशोधन का अन्तरंग हिस्सा माना। तब धर्म के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण हो चुका था और इससे पहले 30 जनवरी 1948 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या एक हिन्दू उग्रवादी नाथूराम गोडसे ने कर दी थी और बापू की हत्या पर गोडसे की विचारधारा का

समर्थन करने वाले लोगों ने सरेआम मिठाइयां बांटी थीं। पं. नेहरू के साथ ही गृहमन्त्री सरदार पटेल इस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हिंसक स्वरूप का नजारा खुद कर रहे थे। महाशोक के अवसाद भरे क्षणों का जश्न मनाना पूरे भारत की आत्मा को भीतर तक झिंझोड़ा गया था और दूरदर्शी नेहरू ने भारत के भविष्य को राजनीतिक का अनुमान लगाने में कोई गलती नहीं की थी। अतः यह कोई छोटा कदम नहीं था कि उन्होंने उन डा. अम्बेडकर का ध्यान हिंसक विचारों की तरफ दिलाया जिन्हें संविधान लिखने के लिए स्वयं महात्मा गांधी ने चुना था। मगर प्रथम संशोधन के बावजूद हिंसा की चुनौती भारत में जारी रही जिसका प्रमाण इस देश में होने वाले साम्प्रदायिक दंगे थे। इन्हें रोकना हर सरकार के लिए गंभीर चुनौती थी। इनका स्वरूप अब बदल रहा था। यह धर्म से सांस्कृतिक पहचान की ओर बढ़ने लगा और विचारों का अहिंसक तब मुगल और मराठा सेनाओं के युद्ध में प्रतीक रूप में उभरने लगा। इतिहास के इन पन्नों की वैचारिक समीक्षाओं और विवेचनाओं में हिंसा का भाव केन्द्र में आने से अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की शालीनता भंग हो गयी और एक ही देश के दो सम्प्रदायों के लोग आपस में एक-दूसरे को संशय की नजरों से देखने लगे। इसकी परिणति

1990 के आसपास जाकर तब हुई जब अयोध्या में दिसम्बर, 1992 में राम मन्दिर आन्दोलन चरम पर पहुंचा और बाबरी मस्जिद को ढहा दिया गया। इसके बाद पूरे देश में साम्प्रदायिक दंगे हुए और हिंसा की बोली राजनैतिक संवाद बन गई। यह लोकतन्त्र में लोगों के निर्भीक होने का सैनिकीकरण था जिसका संविधान पूरा तरह निषेध करता है परन्तु इसके बाद कुछ राज्यों में जिस प्रकार हिंसा को क्रिया की प्रतिक्रिया कह कर परिभाषित किया गया उसने भारतीय संविधान में उल्लिखित हिंसक विचारों के प्रचार-प्रसार के प्रतिबन्ध को बेमानी सा बना दिया और हम हर छोटी लकीर के आगे भी लकीर खींचते हुए आगे इस तरह बढ़े कि आज माब लिचिंग (भीड़ की हिंसा) का शिकार हो गये हैं। जब 'माब लिचिंग' और कुछ नहीं बल्कि हिंसक विचारों का प्रतिपादन ही है जो संविधान की धज्जियां उड़ा कर ऐलान कर रहा है कि भारत में विचार स्वतन्त्रता एक ही सांचे में ढला होना चाहिए। इसे बहुसंख्यक बरक्स अल्पसंख्यक कहना पूरी तरह न्याय संगत नहीं होगा क्योंकि माब लिचिंग का दायरा केवल गऊ की कथित रक्षा तक ही सीमित नहीं है

बल्कि यह संविधान व कानून लागू करने वाली एजेंसियों के भी विरुद्ध है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमने उत्तर प्रदेश में देखा है जो स्थानों बुलन्दशहर व गाजीपुर में क्रमशः इंस्पेक्टर सुबोध कुमार सिंह व कांस्टेबल की हत्या माब लिचिंग के रूप में ही की गई है। यह हिंसक विचारों के प्रचार-प्रसार का ही ऐसा स्वरूप है जिसे सांस्कृतिक जामा पहना दिया गया है। इसके अलावा जिस प्रकार देश के विभिन्न भागों से चुड़ैल या बच्चा चोर होने की आशंका में भीड़ द्वारा हत्या किये जाने की खबरें आती हैं वे भी हिंसक विचारों का ही प्रदर्शन हैं। इसमें एक बात स्पष्ट होती है कि निर्भीकता का अर्थ लोकतंत्र में सत्ताधारी दल या हुकूमत में बैठे लोगों को लगातार जनता के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह बनाये रखने से ही होता है परन्तु ऐसी घटनाएं हमें अपनी ही चुनी हुई सरकारों की जवाबदेही करने से इस तरह बचाती हैं कि हम अपने ही खड़े किये विवादों में उलझे रहें। इसका उदाहरण पिछले लोकसभा चुनावों के समय हुए साम्प्रदायिक दंगे हैं जिनके चंगुल में फंस कर हम यह पूछना ही भूल गये थे सरकार उन हिन्दू और मुसलमान के लगे हुए खेतों के लिए क्या नीति बनायेगी जिसकी उपज का केवल 20

# दलितों की वर्तमान स्थिति

• शिवकुमार

भारत में दलितों के अधिकारों की मांग आजादी से पहले से ही शुरू हो गई थी। जिसका सीधा सा कारण था अंग्रेजी शिक्षा और शासन। यद्यपि अंग्रेज देश की सामाजिक संरचना में किसी भी तरह का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते थे इसके बावजूद मानवीय अधिकारों के संदर्भ में उनकी विचारधाराएं इतनी प्रबल थीं कि उन्हें दलितों के अधिकारों के संदर्भ में सोचने को मजबूर होना पड़ा। भारत में दलित आंदोलन की शुरुआत ज्योतिराव गोविंदराव फुले के नेतृत्व में हुई। ज्योतिबा जाति से माली थे और समाज के ऐसे तबके से संबंध रखते थे जिन्हें उच्च जाति के समान अधिकार नहीं प्राप्त थे। इसके बावजूद ज्योतिबा फुले ने हमेशा ही तथाकथित नीची जाति के लोगों के अधिकारों की पैरवी की। इसके साथ ही ज्योति ने महिलाओं के शिक्षा के लिए न केवल विद्यालय की वकालत की बल्कि सबसे पहले दलित विद्यालय की भी स्थापना की। ज्योतिबा फुले में भारतीय समाज में दलितों को एक ऐसा पथ दिखाया था जिस पर आगे चलकर दलित समाज और अन्य समाज के लोगों ने चलकर दलितों के अधिकारों की कई लड़ाई लड़ी। यूं तो ज्योतिबा ने भारत में दलित-आंदोलनों का सूत्रपात किया था लेकिन इसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ने

का काम बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने किया। एक बात और जिसका जिकर किए बिना दलित आंदोलन की बात बेमानी होगी वो है बौद्ध धर्म। ईसा पूर्व 600 ईसवी में ही बौद्ध धर्म के जरिए एक सामाजिक और राजनीतिक क्रांति लाने की भी पहल की। इसे राजनीति क्रांति कहना इसलिए जरूरी है क्योंकि उस समय सत्ता पर धर्म का आधिपत्य था और समाज की दिशा धर्म के द्वारा ही तय की जाती थी। ऐसे में समाज के निचले तलबे को क्रांति की जो दिशा बुद्ध ने दिखाई वो आज भी परासांगिक है। भारत में चार्वाक के बाद बुद्ध ही पहले ऐसे शख्स थे जिन्होंने ब्राह्मणवाद के खिलाफ न केवल आवाज उठाई बल्कि दर्शन भी दिया जिससे कि समाज के लोग बौद्ध ही दासता की जंजीरों से मुक्त हो सकें।

यदि समाज के निचले तबकों के आंदोलनों का आदिकाल से इतिहास देखा जाए तो चार्वाक को नकाराना भी संभव नहीं होगा। यद्यपि चार्वाक पर कई तरह के आरोप लगाए जाते हैं इसके बावजूद चार्वाक वो पहला शख्स था जिसने लोगों को भगवान के भय से मुक्त होना सिखाया। भारतीय दर्शन में चार्वाक ने ही बिना धर्म और ईश्वर के सुख की कल्पना की। इस तर्ज पर देखने पर चार्वाक भी दलितों

की आवाज उठाता नजर आता है... खैर बात को लौटाते हैं उस वक्त जिस वक्त दलितों के अधिकारों को कानूनी जामा पहनाने के लिए डा. अम्बेडकर ने लड़ाई शुरू कर दी थी। वक्त था जब हमारा देश भारत ब्रिटिश उपनिवेश की शरणी में आता था। लोगों के ये दासता का समय रहा हो लेकिन दलितों के लिए कई मायनों में स्वर्णकाल था।

आज दलितों को भारत में जो भी अधिकार मिले हैं, पृष्ठभूमि इसी शासन की देन थी। यूरोप में हुए पुर्नजागरण और जनानोदय आंदोलनों के बाद मानवीय मूल्यों का महिमा मंडल हुआ। यही मानवीय मूल्य यूरोप की क्रांति के आदर्श बने। इन आदर्शों की जरिए ही यूरोप में एक ऐसे समाज की रचना की गई जिसमें मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी गई। ये अलग बात है कि औद्योगिकीकरण के चलते इन मूल्यों की जगह सबसे पहले पूंजी ने भी यूरोप में ली लेकिन इसके बावजूद यूरोप में ही सबसे पहले मानवीय अधिकारों को कानूनी मान्यता दी गई। इसका सीधा असर भारत पर पड़ना लाजमी था और पड़ा भी। इसका सीधा सा असर भारत के संविधान में देख सकते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्छेद इन ही मानवीय अधिकारों की रक्षा करते

नजर आते हैं। भारत में दलितों की कानूनी लड़ाई लड़ने का जिम्मा सबसे सशक्त रूप में डॉ. अम्बेडकर ने उठाया। डा. अम्बेडकर दलित समाज के प्रेरणा हैं। बाबा साहब अम्बेडकर ने सबसे पहले देश में दलितों के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों की पैरवी की। साफ तौर पर भारतीय समाज के तात्कालिक स्वरूप का विरोध और समाज के सबसे पिछड़े और तिरस्कृत लोगों के अधिकारों की बात की। राजनीतिक और सामाजिक हर रूप में इसका विरोध स्वाभाविक था। यहां तक की महात्मा गांधी भी इन मांगों के विरोध में कूद पड़े। बाबा साहब ने मांग की दलितों को अलग प्रतिनिधित्व (पृथक निरिवाचिका) मिलना चाहिए। यह दलित राजनीति में आज तक की सबसे सशक्त और प्रबल मांग थी। देश की स्वतंत्रता का बीड़ा अपने कंधे पर मानने वाली कांग्रेस की सांसों भी इस मांग पर थम गई थीं। कारण साफ था समाज के ताने बाने के लोगों का सीधा स्वार्थ निहित था और कोई भी इस ताने बाने में जरा सा भी बदलाव नहीं करना चाहता था। महात्मा गांधी जी को इसके विरोध की लाठी बनायी गई और बैठा दिया गया आमरण अनशन पर। आमरण अनशन वैसे ही देश के महात्मा के सबसे प्रबल हथियार था और वो हथियार को

प्रतिशत से भी कम घोषित समर्थन मूल्य पर बिक पाता है। नेहरू का विचार स्वतन्त्रता इसी लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिये था न कि माब लिचिंग के लिए एक-दूसरे की भावना का आदर और सम्मान हाथ में अस्त्र या डंडा लेकर कैसे हो सकता है, जबकि उसके लिए बाकायदा कानून है। हर चुनाव इसी विचार स्वतन्त्रता की तसदीक करते हैं क्योंकि फैंसला बैलेट या बटन से होता है 'बैत' से नहीं। •

आये दिन अपनी बातों को मनाने के लिए प्रयोग करते रहते थे। बाबा साहब किसी भी कीमत पर इस मांग से पीछे नहीं हटना चाहते थे वो जानते थे कि इस मांग से पीछे हटने का सीधा सा मतलब था दलितों के लिए उठाई गई सबसे महत्वपूर्ण मांग के खिलाफ में हामी भरना। लेकिन उन पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगा और अंततः पूना पैकट के नाम से एक समझौते में दलितों के अधिकारों की मांग को धर्म की दुहाई देकर समाप्त कर दिया गया। इन सबके बावजूद डा. अम्बेडकर ने हार नहीं मानी और समाज के निचले तबकों के लोगों की लड़ाई जारी रखी। अम्बेडकर की प्रयासों का ही ये परिणाम है कि दलितों के अधिकारों को भारतीय संविधान में जगह दी गई। यहां तक कि संविधान के मौलिक अधिकारों के जरिए भी दलितों के अधिकारों की रक्षा करने की कोशिश की गई। •

## पृष्ठ 1 का शेष...सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन में दलित साहित्यकारों की भूमिका

और दूबर हो गया। उन्हें शिक्षा, सम्पत्ति, सत्ता के अधिकारों से वंचित करके सवर्णों की दया पर जीने को बाधित कर दिया।

मध्य युग में गुरु रविदास जी ने ब्राह्मणों के गढ़ 'काशी' में इस वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी और कहा कि सब इंसान बराबर हैं और सबको सम्मान से जीने का अधिकार है। उन्होंने कहा—

जात पांत पूछे न कोई,  
हरि को भजे सो हरि का होई।  
जात जात में जात है  
ज्यों केलन के पात  
'रविदास' मानुस न जुड़ सके,  
जब लौं जात न जात।।  
चारों वेद करे जो खंडोति,  
'रविदास' ताहि करे दंडोति।।

उन्होंने 'दासता' व 'गुलामी' को भी चुनौती दी—

पराधीनता पाप है  
जानहि लेओ मेरे मीत।  
रविदास दास पराधीन सो  
कौन करे है प्रीत।।  
पराधीन का दीन क्या  
पराधीन बेदीन।  
'रविदास' दास पराधीन को  
सभी समझें हीन।।

गुरु रविदास जी ने ब्राह्मणों की उच्चता को भी यों चुनौती दी—

रविदास न ब्राह्मण पूजिये  
जो हो गुण हीन  
पूजिये पांव चांडाल के

जो हो ज्ञान प्रवीन।।

इस तरह सामाजिक दशा परिवर्तन का पहला काम दलित समाज के प्रथम साहित्यकार गुरु रविदास जी ने सर्वप्रथम शुरू किया। उन्होंने चितौड़ की महारानी झालीबाई व मीराबाई को दीक्षा देकर जहां स्त्रियों को समानता के धरातल पर लाने का काम किया, वहीं 50 के लगभग राजा—महाराजाओं को दीक्षा देकर झांपड़ियों की पगडंडी को महलों से जोड़कर सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन का काम किया। पर उनके देहावसान के बाद ब्राह्मणवाद ने बदले की भावना से दलितों का दमन प्रारम्भ कर दिया। देश की सत्ता परिवर्तन होने पर राजा, महाराजा, बादशाह कोई भी आये, पर सामाजिक सत्ता पर एकाधिकार ब्राह्मण वर्ग का ही रहता था, इसलिए दलित अछूतों की आवाज कोई सुनने वाला नहीं था।

19वीं सदी में महात्मा ज्योतिबा फुले का अवतरण हुआ। उन्होंने समाज की नब्ज पकड़ते हुए सबसे पहले दलितों की शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने दलितों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले। इसमें प्रथम शिक्षिका उनकी धर्मपत्नी सावित्रीबाई फुले बने। उन्होंने दलितों में जाग्रति के लिए आह्वान किया—

विद्या बिन मति गई,  
मति बिना गति गई  
गति बिना नीति गई,  
नीति बिना वित्त गया।

और वित्त बिना सब कुछ गया,  
यह सब हुआ एक विद्या बिना।

महात्मा फुले ने ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध सत्यशोधक समाज की स्थापना की जिसमें समता, स्वतंत्रता, बन्धुता को प्राथमिकता दी गई। उन्होंने सती प्रथा का विरोध करते हुए विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया। 'गुलामगरी' ग्रन्थ लिखकर गुलामी प्रथा की खुली खिलाफत की।

20वीं सदी में बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने संत गुरु रविदास व महात्मा ज्योतिबा फुले के सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन को आगे बढ़ाते हुए वर्ण व्यवस्था, जात—पांत, ऊंच—नीच, भेदभाव पर सीधा प्रहार किया। उन्होंने सवाल किया कि दलित—अछूत जब हिन्दू धर्म के अंग हैं तो उन्हें अन्य हिन्दुओं की तरह बराबरी के अधिकार क्यों नहीं हैं? उन्होंने दलितों को समानता के अधिकार दिलाने के लिए महाड़ के चोबदार तालाब के पानी पर अछूतों के अधिकार हेतु आन्दोलन शुरू किया और विजय प्राप्त की। इसी तरह नाशिक के कालाराम मन्दिर में दलितों के प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन शुरू किया और काफी संघर्ष के बाद दलितों को मन्दिर में प्रवेश दिलाया। उन्होंने वर्ण व्यवस्था व सामाजिक विषमता की जननी 'मनुस्मृति' की होली जलाकर

सामाजिक समता का नारा बुलन्द किया।

बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने लंदन की राउंड टेबुल कान्फ्रेंस में भारत के दलित—अछूतों की दुर्दशा का विहंगम चित्र खींचते हुए अंग्रेजी हकूमत से कहा कि हमें भी राजसत्ता में अलग से वोट का अधिकार चाहिए। इस पर अंग्रेजी सरकार ने अछूतों को 'कम्युनल अवार्ड' के अन्तर्गत पृथक निर्वाचन क्षेत्र व दो वोट दिये जाने का अधिकार दिया। इससे सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह बदल जाने वाली थी, पर गांधी जी ने पूना की यरवदा जेल में इस 'कम्युनल अवार्ड' के विरुद्ध आमरण अनशन करके बाबा साहब डा. अम्बेडकर को इसे अस्वीकार करने को बाधित कर दिया। इसकी एवज में 'पूना पैक्ट' हुआ जिसके अन्तर्गत अछूतों को आरक्षित—निर्वाचन क्षेत्र व सरकार व शिक्षा संस्थानों में उनकी आबादी के अनुपात में आरक्षण दिये जाने का प्रावधान किया गया। देश को आजादी मिलने के बाद जब बाबा साहब डा. अम्बेडकर को भारतीय संविधान निर्माण का काम सौंपा गया तो उन्होंने उसमें समता, स्वतंत्रता व बन्धुता को तो प्राथमिकता दी, साथ ही दलित—अछूतों को समाज की ऊंच—नीच की खाई से बराबर के धरातल पर लाने के लिए निर्वाचन, शिक्षा एवं नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया और छुआछूत

हो गया और 26 जनवरी, 1950 को समता, स्वतंत्रता व बंधुता पर आधारित भारतीय संविधान भी लागू हो गया। पर आजादी के 71 साल बीत जाने के बाद भी देश के दलित संविधान की प्रस्तावना के उद्देश्य भी हासिल नहीं कर पाये हैं। इसका प्रमुख कारण मनुवादी व्यवस्था तो है ही, पर उससे बढ़कर मनु—मानसिकता के आगे संवैधानिक समता के मौलिक अधिकार तिरोहित होते जा रहे हैं। देश के छह लाख गांवों में दलित आज भी दायम जीवन जी रहे हैं। दलितों का नर—संहार, अत्याचार, अपमान, अन्याय, शोषण, दमन आज भी बदस्तूर जारी है। दलित युवक व युवतियों का बेइज्जती, बलात्कार व कत्ल आज आम बात है।

दलितों के घरों को आग लगा देना, उन्हें जिन्दा जला देना, खेत—खलिहानों से उन्हें बेदखल करना, कुंओं, तालाबों, रास्तों से उन्हें बेदखल कर उन पर तरह—तरह की पाबन्दी लगा देना, आज हर रोज की बात है।

अब बाबा साहब डा. अम्बेडकर की प्रेरणा से दलित साहित्य विभिन्न विधाओं में, सभी भाषाओं में अपने उभार पर है। दलित साहित्यकार अपनी आत्म—कथाओं व अपनी अन्य रचनाओं में सामाजिक विषमता, अन्याय, अत्याचार पर खुलकर लिख रहे हैं, उससे दलित समाज में अपने अधिकारों के प्रति

# दलितों के लिये, आजादी महज एक छलावा

तमिलनाडु में कोयंबटूर जिले के एक हाई स्कूल में साथ पढ़ने वाले वेलमुरुगन व रमेश के बीच गहरी मित्रता है। हालांकि रमेश कभी अपने इस मित्र के घर नहीं जा सकता क्योंकि वह (वेलमुरुगन) दलित बस्ती में रहता है। वेलमुरुगन की झुग्गी में बिजली नहीं आती, लिहाजा वह अपनी पढ़ाई के लिए कभी-कभार इस उच्च जाति के मित्र के यहां चला जाता है। वह पढ़ने में होशियार है और पढ़ाई में रमेश की मदद करता है। लेकिन उसे रमेश के यहां बरामदे में कभी आगे नहीं जाने दिया जाता। उसे वहां कभी-कभार खाना भी मिल जाता है, जो घरेलू दलित नौकरों के लिए निर्धारित अलग प्लेट में परोसकर दिया जाता है।

ग्रामीण भारत में बच्चे जल्दी ही जात-पात संबंधी नियम-कायदे समझ जाते हैं जो जीवनभर उनके साथ चलते हैं, जबकि उनका देश इक्कीसवीं सदी में आगे बढ़ रहा है। देश के 11 बड़े राज्यों के 565 गांवों में अस्पृश्यता को लेकर किए गए सर्वे में पाया गया कि 38 फीसदी शासकीय स्कूलों में दलित बच्चों को खाने के वक्त अलग बैठाया जाता है। 20 फीसदी स्कूलों में दलित बच्चों को दूसरे बच्चों के साथ एक ही स्रोत से पानी तक नहीं पीने दिया जाता।

देश में जारी अस्पृश्यता के बारे

## • हर्ष मंदर

में संभवतः पहली बार कोई राष्ट्रव्यापी सर्वे किया गया। इसकी रिपोर्ट हाल ही में जारी की गई जिसे घनश्याम शाह, सुखदेव थोराट, सतीश देशपांडे, अमिता बाविस्कर और मैंने मिलकर तैयार किया है। इस रिपोर्ट के मुताबिक इस तरह की छुआछूत तमाम स्थानीय सरकारी संस्थानों में मिलती है। 27.6 फीसदी दलितों को पुलिस स्टेशनों और 25.7 फीसदी दलितों को राशन की दुकानों में घुसने ही नहीं दिया जाता। 33 फीसदी सार्वजनिक स्वास्थ्य कर्मी दलितों के घर जाने से इनकार कर देते हैं और 23.5 फीसदी दलितों को अपने घर के पते पर भेजे गए पत्र नहीं मिलते। सर्वे के तहत 30.8 फीसदी स्व-सहायता समूहों व सरकारी समितियों और 29.6 फीसदी पंचायत कार्यालयों में दलितों के लिए बैठने की अलग व्यवस्था पाई गई। 14.4 फीसदी गांवों में दलितों को पंचायत भवन में घुसने नहीं दिया जाता। 12 फीसदी गांवों में दलितों को मतदान केंद्रों तक नहीं पहुंचने दिया जाता या फिर अलग कतार में खड़े होने के लिए विवश किया जाता है। सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाने की संवैधानिक व्यवस्था से बद्ध होने के बावजूद कई स्थानीय संस्थाएं स्पष्ट तौर पर अस्पृश्यता को न केवल झेलती हैं,

बल्कि आगे भी बढ़ाती हैं।

दलित बस्तियां ज्यादातर गांव से बाहर होती हैं और सरकार द्वारा इंदिरा आवास हाउसिंग कालोनियों के निर्माण या गुजरात में वर्ष 2001 में आए भूकंप के बाद कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किए गए पुनर्निर्माण कार्य भी इसकी याद दिलाते हैं। सर्वे किए गए तकरीबन आधे गांवों में दलितों को जल संसाधनों तक नहीं पहुंचने दिया जाता। एक तिहाई से ज्यादा गांवों में पाया गया कि दलित गांव की दुकानों में प्रवेश नहीं कर सकते। दलितों द्वारा सार्वजनिक तौर पर कोई उत्सव मनाने या खुशी का इजहार करने पर भी व्यापक पैमाने पर और कई बार हिंसक प्रतिक्रिया जताई जाती है। 47 फीसदी से ज्यादा गांवों में सड़कों पर दलितों के बारात निकालने पर प्रतिबंध था। यहां तक कि दलितों को साफ-सुथरे, चमकदार और फैशनेबल कपड़े या चश्मे पहनने की मनाही थी।

सर्वे के दौरान औसतन 64 फीसदी जगहों पर मंदिरों में दलितों का प्रवेश वर्जित पाया गया। अध्ययन में इस बात को स्थापित कर दिया कि इस तरह के प्रतिबंध दलितों के धर्मांतरण के बाद समतावादी मूल्यों को अपनाने के बावजूद लागू हैं। पंजाब में 51 गांवों में सर्वे किया गया, जिनमें से 41 गांवों में दलित सिखों के लिए अलग

व किसी भी तरह के मानवीय भेदभाव को दण्डनीय करार निर्धारित किया।

बाबा साहब डा. अम्बेडकर ने देश के दलितों को न केवल उनकी सामाजिक व आर्थिक विषम स्थिति से अवगत कराया बल्कि इससे छुटकारा पाने के लिए शिक्षित बनने, संगठित होने व संघर्ष करने का रास्ता भी दिखाया। उन्होंने राजा व रंक, महारानी व मेहतरानी के भेद को मिटाकर सामाजिक विषमता की त्रासदी झेल रहे करोड़ों लोगों को विकास की ओर बढ़ने के लिए बराबरी के अवसर देकर भारतीय दलित जन समुदाय को एक नया जीवन प्रदान किया।

डा. अम्बेडकर राजनीति के महानायक थे, उन्होंने आह्वान किया कि देश के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग व धार्मिक अल्पसंख्यकों को मिलकर देश की राजसत्ता पर काबिज होना चाहिए क्योंकि वे देश की आबादी में 85 फीसदी हैं जबकि शेष 15 फीसदी ब्राह्मणवादी लोग उन पर सदियों से राज कर रहे हैं।

देश 15 अगस्त, 1947 को आजाद

गुरुद्वारे पाए गए। महाराष्ट्र में महारों के बड़े पैमाने पर बौद्ध धर्म अपनाने के बावजूद 51 फीसदी गांवों में दलितों का मंदिरों में प्रवेश वर्जित था। केरल और कर्नाटक जैसे राज्यों में धर्मांतरित दलित और बाकी लोगों के बीच और यहां तक कि दलित पादरियों के खिलाफ भी भेदभाव देखा गया।

इस तरह स्कूल व पुलिस स्टेशन

चेतना तो जाग्रत हुई है, पर उनका यह दलित साहित्य का हथियार सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन में कोई ज्यादा कारगर सिद्ध नहीं हुआ है, क्योंकि एक अकेली बहन मायावती के मुख्यमंत्री बन जाने या बहन मीरा कुमार के लोकसभा अध्यक्ष बन जाने, या फिर डा. के.आर. नारायणन के राष्ट्रपति बनने व श्री के.जी. बालाकृष्णन के सुप्रीम कोर्ट का 'चीफ जस्टिस' बन जाने को हम पूर्ण सामाजिक परिवर्तन नहीं कह सकते। यह एक शुरुआत भर है, एक पहला कदम है सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन की ओर, पर इससे आगे अगर हम मनुवादी व्यवस्था से छुटकारे के लिए और पूर्ण सामाजिक व्यवस्था, बदलना चाहते हैं तो दलित साहित्यकारों को कलम के साथ-साथ बाबा साहब डा. अम्बेडकर के शिक्षा सूत्र के बाद, उनके 'संगठन' व 'संघर्ष' के मूलमंत्र को हृदयांगम करके उस पर दृढ़ता से अमल करना होगा, वरना सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन में दलित साहित्यकारों की भूमिका अधूरी ही रहेगी। •

जैसे सरकारी संस्थानों में, मंदिर व दुकान जैसे सार्वजनिक स्थलों में खेतों व बाजारों में, लोगों के घरों यहां तक कि दिलों में भी इस हद तक मौजूद अस्पृश्यता को देखकर लगता है कि भारत में दलित आज भी असहाय और गुस्से के भाव से उस भोर का इंतजार कर रहे हैं, जो उनके जीवन में समानता की नई रोशनी लेकर आए। •

के आगे आना होगा।

जहां तक दलितों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति की बात है आजादी के 71 सालों बाद भी उसमें जो बदलाव आना चाहिए था, वह उच्च वर्णों की मानसिकता के कारण नहीं आ पाया। अस्पृश्यता (छुआछूत) देश में बदस्तूर आज भी कायम है, भले ही वह शहर व कस्बों में सीधे देखने को न मिले, पर उच्च शिक्षित सवर्ण लोगों के मन व मस्तिष्क में वह कायम है। वह कभी यह बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है कि कोई दलित पढ़-लिखकर, निर्धारित परीक्षा पास करके भी उसके बराबर की सीट पर आकर बैठे। इस तरह जात-पांत, ऊंच-नीच का दोगम दर्जा उनके दिमाग में आज भी कायम है जो दलितों के आरक्षण कोटे के विरोध में उनके द्वारा किये जा रहे आरक्षण विरोधी आन्दोलनों से साफ झलकता है।

देश के 6 लाख गांव तो वर्ण व्यवस्था के अड्डे हैं जहां जात-पांत के आधार पर काम, दाम और सम्मान का निर्धारण होता है। संविधान ने अस्पृश्यता (छुआछूत) को दण्डनीय करार दे रहा है और उसके लिए दलित अत्याचार निरोधक कानून भी है पर उस पर मुश्किल से अमल किया जाता है क्योंकि थाने से लेकर कोर्ट कचेहरी तक मनु मानसिकता के सवर्ण अधिकारी बैठे हैं जिन्हें न कानून का डर है, न संविधान का और ना ही सरकार का। इसलिए दलित पर अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न की

घटनाओं पर कोई ज्यादा संज्ञान नहीं लिया जाता, बल्कि ऐसी घटनाओं को लिपापोती करके दबा दिया जाता है।

देश में पहली बार अस्पृश्यता के बारे में सर्वे किया गया, जिसकी सर्वेक्षण कमेटी में थे—सर्वश्री सुखदेव थोराट, घनश्याम शाह, सतीश देशपांडे, अमिता बाबिस्कर और हर्ष मंदर। इन्होंने सर्वेक्षण करके जो रिपोर्ट दी है उसके मुताबिक इस तरह की छुआछूत तमाम स्थानीय सरकारी संस्थानों में मिलती है। 27.6 फीसदी दलितों को पुलिस स्टेशनों और 25.7 फीसदी दलितों को राशन की दुकानों में घुसने ही नहीं दिया जाता। 33 फीसदी सार्वजनिक स्वास्थ्य कर्मी दलितों के घर जाने से इनकार कर देते हैं और 23.5 फीसदी दलितों को अपने घर के पते पर भेजे गए पत्र नहीं मिलते। सर्वे के तहत 30.8 फीसदी स्व-सहायता समूहों व सरकारी समितियों और 29.6 फीसदी पंचायत कार्यालयों में दलितों के लिए बैठने की अलग व्यवस्था पाई गई। 14.4 फीसदी गांवों में दलितों को पंचायत भवन में घुसने नहीं दिया जाता। 12 फीसदी गांवों में दलितों को मतदान केंद्रों तक नहीं पहुंचने दिया जाता या फिर अलग कतार में खड़े होने के लिए विवश किया जाता है। सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाने की संवैधानिक व्यवस्था से बढ़ होने के बावजूद कई स्थानीय संस्थाएं स्पष्ट तौर पर

## सम्पादकीय का शेष...दलितों के मौलिक अधिकारों का हनन

अस्पृश्यता को न केवल झेलती हैं, बल्कि आगे भी बढ़ाती हैं।

सर्वे किए गए तकरीबन आधे गांवों में दलितों को जल संसाधनों तक नहीं पहुंचने दिया जाता। एक तिहाई से ज्यादा गांवों में पाया गया कि दलित गांव की दुकानों में प्रवेश नहीं कर सकते। दलितों द्वारा सार्वजनिक तौर पर कोई उत्सव मनाने या खुशी का इजहार करने पर भी व्यापक पैमाने पर और कई बार हिंसक प्रतिक्रिया जताई जाती है। 47 फीसदी से ज्यादा गांवों में सड़कों पर दलितों के बारात निकालने पर प्रतिबंध था। यहां तक कि दलितों को साफ-सुथरे, चमकदार और फैशनेबल कपड़े या चश्मे पहनने की मनाही थी।

सर्वे के दौरान औसतन 64 फीसदी जगहों पर मंदिरों में दलितों का प्रवेश वर्जित पाया गया। अध्ययन में इस बात को स्थापित कर दिया कि इस तरह के प्रतिबंध दलितों के धर्मांतरण के बाद समतावादी मूल्यों को अपनाने के बावजूद लागू हैं। पंजाब में 51 गांवों में सर्वे किया गया, जिनमें से 41 गांवों में दलित सिखों के लिए अलग गुरुद्वारे पाए गए। महाराष्ट्र में महारों के बड़े पैमाने पर बौद्ध धर्म अपनाने के बावजूद 51 फीसदी गांवों में दलितों का मंदिरों में प्रवेश वर्जित था। केरल और कर्नाटक जैसे राज्यों में धर्मांतरित दलित और बाकी लोगों के बीच और

यहां तक कि दलित पादरियों के खिलाफ भी भेदभाव देखा गया।

सरकारी नौकरियों में 'आरक्षण कोटा' पूरा नहीं किए जाने से शिक्षित दलित युवाओं को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। एक ओर जहां सरकारी नौकरियों में षड्यंत्र के तहत दलितों के आरक्षण कोटे को खत्म किया जा रहा है, वहीं प्राइवेट कम्पनियों में भी उनको नौकरियां मिलने के अवसर ना के बराबर हैं, क्योंकि वहां नौकरी देने वाले उच्च जाति के मनु मानसिकता के लोग अधिकारी हैं जो गैर-दलितों को नौकरी में वरीयता देते हैं। इस वक्त प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया—सभी जगह दलितों की उपस्थिति न के बराबर है।

दलितों की शैक्षणिक स्थिति पहले से कुछ सुधरी है और शिक्षित युवाओं का प्रतिशत बढ़ा है, पर नौकरी न मिलने पर बेरोजगारी बढ़ी है। ऐसी स्थिति में उनकी आर्थिक स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे में उन्हें अपने को जीवित रखने के लिए हर क्षेत्र में सवर्ण युवाओं से अधिक संघर्ष करना पड़ता है।

संसद में दलितों के 130 सांसद हैं। सभी दलितों की दुर्दशा से परिचित हैं, पर उनमें से कोई भी खुलकर दलितों के अधिकारों पर हो रहे अत्याचारों पर बोलने के लिए तैयार

नहीं। उन्हें डर है कि अगर वे उनके अधिकारों व अत्याचारों पर बोलेंगे, तो कहीं उनका अगली लोकसभा की उम्मीदवारी का पार्टी टिकट ही न कट जाए। ऐसी स्थिति में वे बाबा साहब डा. अम्बेडकर जी के साथ विश्वासघात कर रहे हैं जिनके बनाये संविधान के कारण वे आरक्षित कोटे पर चुनकर संसद पहुंचे हैं, साथ ही वे दलित समाज और दलितों के साथ भी विश्वासघात कर रहे हैं जिन्होंने अपना कीमती वोट देकर उन्हें जीताकर संसद में इसलिए भेजा कि वे उनकी आवाज बनकर उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ेंगे और उन पर अत्याचार, अन्याय, अपमान को रोकेंगे, पर अब तक उन्हें उनसे निराशा ही मिली है।

देश की आजादी के बाद उनकी स्थिति में जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक सुधार होना चाहिए था, रोजी, रोटी, कपड़ा व मकान की उनकी आस पूरी होनी चाहिए थी, उसे स्वतंत्रता, समता, बन्धुता, न्याय, सुरक्षा मिलनी चाहिए थी, वह तो गणतंत्र के 69 सालों में पूरी नहीं हुई, ऐसी स्थिति में अब दलितों को फिर से सोचना होगा कि अब लोकसभा के 2019 के चुनावों में वे अपने वोट का किस तरह का इस्तेमाल, किस पार्टी के लिए करना है, ताकि नई सरकार बनने पर उनकी स्थिति में सुधार हो सके और वे अपने संवैधानिक अधिकार पाकर अपना व अपनी अगली पीढ़ी का भविष्य उज्ज्वल कर सकें।

— डा. सोहनपाल सुमनाक्षर

# पानी के लिए दलितों का संघर्ष

• प्रदीप श्रीवास्तव

हमारे देश की सभ्यता के सामाजिक पहलू में जाति प्रथा का कलंक घुला हुआ है। दुनिया की दूसरी बहुत-सी सभ्यताओं से बिल्कुल अलग भारत की सामाजिक संरचना में हजारों सालों तक एक वर्ग को गुलाम बनाने की संस्कृति शायद ही मिले। जाति व्यवस्था में अस्पृश्यता के नाम पर दलितों को निचले पायदान पर रखते हुए बुनियादी सुविधाओं से भी महारूम रखा गया है। दलितों के साथ पानी को लेकर होने वाला भेदभाव सबसे कम चर्चित विषयों में रहा है। जहां पानी की पर्याप्त उपलब्धता है, वहां से दलितों ने किसी तरह से तालाब, नहर, नदी, कुएं आदि से पानी पा लिया, लेकिन बुंदेलखण्ड जैसे सूखे इलाकों में आज भी दलितों को पानी के लिए संघर्ष करना पड़ता है। बुंदेलखंड के पिछड़े व सामंती इलाकों में दलितों को पानी के लिए सवर्णों की दया पर जिंदा रहना पड़ता है, जो विरोध करते हैं, वे थाने-मुकदमे के चक्कर में फंस जाते हैं।

शब्दकोशों में दलित शब्द का अर्थ-मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, पीड़ित, शोषित, दबा हुआ, खिन्न, उदास, टुकड़ा, खंडित, तोड़ना, पीसा हुआ आदि लिखा है। डाक्टर भीमराव अम्बेडकर ने भी दलित आंदोलन के दौरान यह शब्द हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हजारों वर्षों से

अस्पृश्य या अछूत समझी जाने वाली तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयोग किया है। हिंदू धर्म शास्त्रों द्वारा हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले (चौथे) पायदान पर स्थित शूद्र ही दलित है। संवैधानिक भाषा में इन्हें अनुसूचित जाति कहा गया है। ऐतिहासिक रूप से करीब दस हजार साल पहले कबीलाई समाज व्यवस्था के बाद सामंती व्यवस्था के प्रारंभ में समाज में कर्म के आधार पर बांट कर कुछ जातियों को अपनी बुद्धि, बल और क्षमता के आधार पर समाज में बढ़ने, फैलने-फूलने के सभी दरवाजे बंद कर दिए। बाद में सवर्णों ने शूद्रों पर अपवित्र और अस्पृश्य होने का कलंक और मढ़ दिया।

हालांकि, पिछले छह-सात दशकों में दलित शब्द का अर्थ काफी बदल गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या में लगभग 16.6 फीसद यानी 20.14 करोड़ आबादी दलितों की है। दलितों में महिला और पुरुष का लिंग अनुपात 936 प्रति हजार है, जो सवर्ण हिंदुओं (931) और सिखों (893) के लिंग अनुपात से काफी बेहतर है। दलितों में साक्षरता दर (54.70 फीसद) है, जो सवर्ण हिंदुओं (65.1), मुसलमानों (59.1) और सिखों (69.4) की तुलना में काफी कम है। काम में भागीदारी के मामले में दलित सबसे आगे हैं। इसका फीसद 48.4 है, जो सवर्ण हिंदुओं (40.4), मुसलमानों (31.

3), ईसाई (39.3) और सिखों (31.7) की तुलना में काफी अधिक है।

वैसे तो भारत में दलितों ने गुलामी के साथ ही आंदोलन शुरू कर दिया था। लेकिन आधुनिक भारत में व्यवस्थित तरीके से दलित आंदोलन की शुरुआत ज्योतिबा राव फुले और सावित्री बाई फुले के समय से मानी जाती है। वे जाति से माली थे और उन्हें पानी लेने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ती थी। दलितों को समाज शिक्षा की वकालत करते हुए उन्होंने दलित आंदोलनों का सूत्रपात किया। लेकिन इसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का काम बाबा साहब अम्बेडकर ने किया। 25 दिसम्बर, 1927 को महाड़ (महाराष्ट्र) में अपने एक सत्याग्रह के दौरान डा. अम्बेडकर ने मनुस्मृति जला डाली। उन्होंने सार्वजनिक स्थानों पर दलितों को पानी लेने का भी ऐलान किया, क्योंकि सभी कुदरती साधन और व्यवस्थाएं सभी इंसानों के लिए हैं। यूरोप में भी पुनर्जागरण और ज्ञानोदय आंदोलनों के बाद ही मानवीय मूल्यों का महिमामंडन हुआ और यही मानवीय मूल्य यूरोप की क्रांति के आदर्श बने। इन आदर्शों की जरूरत ही यूरोप में एक ऐसे समाज की रचना की गई, जिसमें मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी गई। इसका सीधा असर भारत पर पड़ना लाजिमी था और पड़ा भी। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्छेद इन्हीं मानवीय अधिकारों की

रक्षा करते नजर आते हैं।

आधुनिक भारत में भी दलितों पर अत्याचार रुका नहीं है। 1990 के दशक में उदारीकरण के बाद तो दलितों की स्थिति और खराब हुई है। इधर, एक दशक में ग्रामीण इलाकों में दलितों व गैर-दलितों के बीच सत्ता के असंतुलन ने कोढ़ में खाज पैदा कर दी। दलितों पर जुल्मों की तादाद तेजी से बढ़ी है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के मुताबिक देश में साल 2014 में दलितों के खिलाफ 47,064 अपराध हुए, यानी औसतन हर घंटे दलितों के खिलाफ पांच से ज्यादा (5.3) के साथ अपराध हुए। कुएं से पानी नहीं भरने देने जैसी मामूली घटनाओं को लेकर 2004 से 2013 के दरम्यान दस सालों में 6490 दलितों की हत्याएं हुईं।

अब बात करते हैं बुंदेलखंड की। इसका कोई आधिकारिक नक्शा तो नहीं है, लेकिन भौगोलिक स्थिति, भाषा और संस्कृति की समानता को देखते हुए यह मध्य प्रदेश के सात और उत्तर प्रदेश के छह जिलों से मिलकर बनता है। सन 2011 की जनगणना के अनुसार बुंदेलखंड की आबादी करीब एक करोड़ अस्सी लाख है। इनमें एक करोड़ पुरुष और अस्सी लाख महिलाएं शामिल हैं।

बुंदेलखंड की करीब अस्सी फीसद आबादी गांवों में निवास करती है। इनमें भी पच्चीस से तीस फीसद

आबादी दलितों की है, यह आबादी गांवों के बाहरी हिस्से में उपेक्षित रह कर गुजर बसर करने को मजबूर है। बुंदेलखंड न सिर्फ औद्योगिक व सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा है, बल्कि यहां के समाज में सामंती मूल्य भी गहराई तक जड़ें जमाए हुए हैं। जाति व्यवस्था चरम पर है। दलितों से भेदभाव के मामले में भी बुंदेलखंड की स्थिति काफी खराब है। सूखे के कारण पानी को लेकर होने वाले झगड़ों में भी दलितों को सबसे ज्यादा निशाना बनाया जाता है। दलितों के साथ भेदभाव की हालत यह है कि हर गांवों में इसे पालन किया जाता है। अगर तय समय पर पानी नहीं ले सके तो घंटों इंतजार करना पड़ता है। इसे लेकर कई बार झगड़े होते हैं गांव की पंचायत में निपटारा नहीं होने की दशा में ऐसे झगड़े पुलिस और कोर्ट तक पहुंच जाते हैं।

कई जातियों के घर अक्सर गांव के बाहर होते हैं, इसलिए इस वर्ग की महिलाओं या पुरुषों को गांव के अंदर के हैंडपंपों से पानी लेने की इजाजत नहीं है। हैंडपंप खराब होने की दशा में काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। दलितों को हैंडपंप सुधारने के लिए किसी अपने जैसे ही दलित मिस्त्री को ढूंढना पड़ता है। गांवों में तो ऐसे मिस्त्री मिलते नहीं हैं, उन्हें महंगे दामों पर आसपास के शहर से उन्हें लाना पड़ता है। दलितों का एक हैंडपंप सुधारने में कई-कई दिन लग जाते हैं। तब तक इन्हें गांव के सरकारी स्कूलों से पानी भरना पड़ता है। •